न्यायविनिश्चय-विवरण : एक मूल्यांकन

• डॉ० शीतलचन्द जैन, जयपुर

भारतीय दर्शनमें जैनदर्शनका एक विशिष्ट स्थान है और जैनदर्शनके क्षेत्रमें आचार्य श्रीमद्भट्टाकलंकदेव द्वारा लिखित न्यायविनिश्चय अद्वितीय ग्रन्थरत्न है। इस ग्रन्थके पद्य भागपर प्रबल तार्किक स्याद्वादविद्यापति वादिराजसूरिकृत तात्पर्य विद्योतिनी व्याख्यान रत्नमाला उपलब्ध है जिसका नाम न्यायविनिश्चय-विवरण है। जैसा कि वादिराजकृत श्लोकसे प्रकट है—

प्रणिपत्य स्थिरभक्त्या गुरून् पदानप्युदारबुद्धिगुणान्।
न्यायविनिश्चयविवरणमभिरमणीयं मया क्रियते॥

उक्त श्लोकसे स्पष्ट है कि इसका नाम न्यायविनिश्चय-विवरण ही है, अलंकार नहीं। इस विषय पर विद्वान् संपादकने काफी महत्त्वपूर्ण प्रमाण उपस्थित कर विमर्श किया है। ग्रन्थका संपादन २०वीं शताब्दिके प्रसिद्ध मूर्धन्य दार्शनिक विद्वान् पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य द्वारा किया गया है। पं० जी की जो संपादित कृतियाँ हैं उनमें आचार्य भट्टाकलंकदेव द्वारा रचित ग्रंथ प्रमुख हैं। आपकी संपादकीय एव प्रस्तावनाओंको पढ़कर ग्रंथका रहस्य सुगमतासे समझमें आ जाता है। वस्तुतः प्राचीन ग्रन्थोंमें दार्शनिक ग्रन्थोंका सम्पादन अति दुसाध्य कार्य है। इस कार्यके लिये निष्ठा, समय, शक्तिके साथ विद्वत्ता अत्यन्त अपेक्षित है। क्योंकि दार्शनिक ग्रन्थोंमें ग्रन्थान्तरोंके अवतरण पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दोनोंमें प्रचुर मात्रामें आते हैं उन सबका स्थान खोजना तथा उपयुक्त टिप्पणियोंका संकलन आदि सभी कार्य धैर्य और स्थिरताके बिना नहीं सध सकते विशेषकर उन ग्रन्थोंके सम्पादनमें जिनका मूल भाग उपलब्ध न हो और विवरणकी प्रतियाँ अशुद्धियोंका पुञ्ज हों ऐसी स्थितिमें सम्पादककी प्रतिभाकी समीक्षा विद्वान् ही कर सकते हैं। हम जैसे अत्यल्पबुद्धि वाले तो उनकी सम्पादित कृतियोंका मूल्यांकन ही कर सकेंगे।

प्रस्तुत कृति न्यायविनिश्चयविवरण दो भागोंमें विभक्त है। इसमें कुल तीन प्रस्ताव हैं जिसमें प्रथम भागके प्रथम प्रस्तावमें प्रत्यक्षकी विवेचना है और द्वितीय भागके द्वितीय एवं तृतीय प्रस्तावमें क्रमशः अनुमान एवं प्रवचनकी विवेचना है। ग्रन्थकारने सर्वप्रथम न्यायके विनिश्चय करनेकी प्रतिज्ञा की है। वे न्याय अर्थात् स्याद्वादमुद्रांकित आम्नायको कलिकाल दोषसे गुणद्वेषी व्यक्तियों द्वारा मलिन किया हुआ देखकर विचलित हो उठते हैं और भव्य पुरुषोंकी हितकामना से सम्यग्ज्ञान-वचन रूपी जलसे उस न्याय पर आये हुए मलको दूर करके उसको निर्मल बनानेके लिए कृतसंकल्प होते हैं। जिसके द्वारा वस्तु स्वरूपका निर्णय किया जाय उसे न्याय कहते हैं। अर्थात् न्याय उन उपायोंको कहते हैं जिनसे वस्तु तत्त्वका निश्चय हो। ऐसे उपाय तत्त्वार्थसूत्रमें प्रमाण और नय दो तथा इनके भेद-प्रभेद ही निर्दिष्ट हैं।

विद्वान् सम्पादकने अपने मन्तव्यमें लिखा है कि दार्शनिक क्षेत्रमें दर्शनकी व्याख्या बदली है और वह चैतन्याकारकी परिधिको लाँघकर पदार्थोंके सामान्यावलोकन तक जा पहुँची परन्तु सिद्धान्त ग्रन्थोंमें दर्शनका अनुपयुक्त दर्शन तलवत ही वर्णन है।

विद्वान् सम्पादकने अकलंकके ज्ञानकी साकारता विषयक विवेचनमें धवला-जयधवलाका आधार लेते हुए न्यायविनिश्चय-विवरणका युक्तिसंगत तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तावनामें प्रस्तुत किया है। इस प्रस्तावना को पढ़कर ग्रन्थकी कारिकाओंके हृदयको समझनेमें कठिनाई नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सामान्य विशेषात्मक और द्रव्य पर्यायात्मक है, के विवेचन प्रसंगमें सुयोग्य विद्वान्ने ग्रन्थको आधार बनाते हुये इतर भारतीय दार्शनिकोंकी समालोचना करते हुए राहुल सांकृत्यायनके विचारोंको विस्तारसे उल्लेख करके समीक्षा की है और जैनदर्शनकी दृष्टिसे पदार्थकी कैसी व्यवस्था है इसको सूक्ष्मातिसूक्ष्म तर्कोंके माध्यमसे विषयको समझाया है।

इसी तरह विद्वान् सम्पादकने प्रत्यक्षके भेदोंके विमर्शमें आचार्य अकलंक द्वारा मान्य भेद और उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा मान्य भेदोंको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अकलंक देवने प्रत्यक्षके तीन भेद किये हैं :—१–इन्द्रिय प्रत्यक्ष २–अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष ३–अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष।

चक्षु आदि इन्द्रियोंसे रूपादिकका स्पष्ट ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। मनके द्वारा सुख आदिकी अनुभूति मानस प्रत्यक्ष है। अकलंकदेवने लघीयस्त्रयस्ववृत्तिमें स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोधको अतिन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा है। इसका अभिप्राय इतना ही है कि–मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध ये सब मतिज्ञान हैं, मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे इनकी उत्पत्ति होती है। मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होता है। इन्द्रियजन्य मतिज्ञानको जब संव्यवहारमें प्रत्यक्ष रूपसे प्रसिद्धि होनेके कारण इन्द्रियप्रत्यक्ष मान लिया तब उसी तरह मनोमति रूप स्मरण प्रत्यभिज्ञान तर्क और अनुमानको भी प्रत्यक्ष ही कहना चाहिये। परन्तु संव्यवहार इन्द्रियजन्य मतिको तो प्रत्यक्ष मानता है पर स्मरण आदि को नहीं। अतः अकलंककी स्मरण आदिको अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष माननेकी व्याख्या उन्हीं तक सीमित रही। वे शब्दयोजनाके पहिले स्मरण आदिको मतिज्ञान और शब्दयोजनाके बाद इन्हींको श्रुतज्ञान भी कहते हैं। पर उत्तरकालमें असंकीर्ण प्रमाण विभागके लिए—"इन्द्रियमति और मनोमतिको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मृति आदिको परोक्ष, श्रुतको परोक्ष और अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञान ये तीन ज्ञान परमार्थ प्रत्यक्ष" यही व्यवस्था सर्वस्वीकृत हुई।

न्यायविनिश्चयविवरणके द्वितीय भागकी विस्तृत प्रस्तावनामें प्रमाण विभागकी चर्चा करते हुए विद्वान् सम्पादकने लिखा है कि द्वितीय भागके दो प्रस्तावोंमें परोक्ष प्रमाणके विषयमें आचार्य अकलंकदेवने जैनदार्शनिक क्षेत्रमें एक नई व्यवस्था दी। अकलंकदेवने पाँच इंद्रिय और मनसे होनेवाले ज्ञानको जो कि आगमिक परिभाषामें परोक्ष था, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कोटिमें लिया और स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, आभिनिबोधिक और श्रुत इन पाँचोंको आगमानुसार परोक्ष प्रमाण कहा है।

प्रवचन प्रस्तावमें सर्वज्ञताके विषयमें पर्याप्त ऊहापोह किया है। विद्वान् लेखकने अकलंकके अभिप्राय को समझानेके लिए सर्वज्ञताका इतिहास बताते हुए लिखा है कि—

सर्वज्ञताके विकासका एक अपना इतिहास भी है। भारतवर्षकी परम्पराके अनुसार सर्वज्ञताका सम्बन्ध भी मोक्षसे था। मुमुक्षुओंके विचारका मुख्य विषय यह था कि मोक्षके उपाय, मोक्षका आधार, संसार और उसके कारणोंका साक्षात्कार हो सकता है या नहीं। विशेषतः मोक्ष प्राप्तिके उपायोंका अर्थात् उन धर्मानुष्ठानोंका जिनसे आत्मा बन्धनोंसे मुक्त होता है, किसीने स्वयं अनुभव करके उपदेश दिया है या नहीं? वैदिक परम्पराओंके एक भागका इस सम्बन्धमें विचार है कि धर्मका साक्षात्कार किसी एक व्यक्तिको नहीं हो सकता, चाहे वह ब्रह्मा, विष्णु या महेश्वर जैसा महान् भी क्यों न हो? धर्म तो केवल अपौरुषेय वेदसे ही जाना जा सकता है। वेदका धर्मसे निर्बाध और अन्तिम अधिकार है। उसमें जो लिखा है वही धर्म है। मनुष्य प्रायः रागादि द्वेषोंसे दूषित होते हैं और अल्पज्ञ भी। यह सम्भव ही नहीं है कि कोई भी मनुष्य किसी भी सम्पूर्ण निर्दोष या सर्वज्ञ बनकर धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थोंका साक्षात्कार कर सके।

विद्वान् सम्पादकने न्यायविनिश्चयविवरणके दोनों भागोंकी प्रस्तावनाओंमें जो चिन्तनपूर्ण प्रमेय दिया है वह बिल्कुल मौलिक, महत्त्वपूर्ण एवं नया है। जो दार्शनिक विद्वानोंके लिए अत्यन्त अनुकरणीय, विचारणीय एवं दिशाबोध देने वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org